INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 11 | DECEMBER - 2022

प्राचीन भारत में सामन्तवाद के उद्भव का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. विजय कुमार
असि0 प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास विभाग,
इन्द्रासन सिंह स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

शोध सारांश –

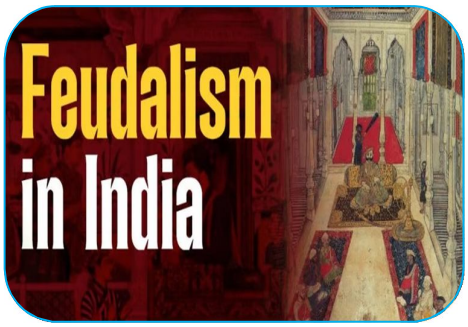

प्राचीन भारत में भूमि दान की परंपरा ने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। इसने सामाजिक–आर्थिक संरचना में भी गहरे परिवर्तन उत्पन्न किए। गुप्त काल से आरंभ होकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक भूमि दान की प्रवृत्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई। प्रारंभ में यह दान मुख्यतः ब्राह्मणों को धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों तथा विद्या के संरक्षण हेतु दिया जाता था, जिसे "ब्रह्मदेय" या "अग्रहार" कहा जाता था। इसके अतिरिक्त मंदिरों को भी व्यापक भूमि दान प्रदान किए गए। दान के फलस्वरूप धार्मिक संस्थाएँ आर्थिक दृष्टि से सशक्त होती गईं। ये दान प्रायः कर–मुक्त होते थे और दान प्राप्तकर्ता को भूमि के साथ–साथ उस पर रहने वाले किसानों से कर वसूलने तथा स्थानीय प्रशासन चलाने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार भूमि का स्वामित्व और उससे संबंधित अधिकार धीरे–धीरे राज्य के हाथों से निकलकर निजी या अर्ध–निजी स्तर पर पहुँचने लगा।

भूमि दान की इस व्यवस्था ने केंद्रीय सत्ता को कमजोर किया जब राजा अपने अधिकारियों, सैन्य सेवकों और ब्राह्मणों को भूमि दान के रूप में वेतन या पुरस्कार देने लगे, तब नगद अर्थव्यवस्था का महत्व घटने लगा और भूमि ही प्रमुख संसाधन बन गई। इससे प्रशासनिक ढाँचे में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। दान प्राप्त करने वाले व्यक्ति या संस्थाएँ अपने–अपने क्षेत्रों में कर संग्रह, न्याय व्यवस्था तथा सुरक्षा का कार्य स्वयं करने लगीं। इसके परिणाम स्वरूप स्थानीय स्तर पर शक्तिशाली भू–स्वामी वर्ग का उदय हुआ, जिन्हें कालान्तर में सामंत कहा गया। ये सामंत नाममात्र के लिए राजा के अधीन होते थे क्योंकि वे अपने क्षेत्रों में स्वायत्त शासकों की भाँति कार्य करते थे। इस प्रकार भूमि दान ने एक ऐसी राजनीतिक संरचना को जन्म दिया, जिसमें सत्ता का विभाजन और स्थानीयकरण प्रमुख विशेषता बन गया। सामाजिक स्तर पर भूमि दान की व्यवस्था ने वर्ग विभाजन को बढावा दिया। दान प्राप्तकर्ताओं को न केवल भूमि का स्वामित्व मिला, बल्कि वहाँ के कृषकों और श्रमिकों पर भी उनका अधिकार स्थापित हो गया। इससे कृषक वर्ग की स्थिति कमजोर होती चली गई और वे आर्थिक तथा सामाजिक रूप से आश्रित बन गए। जबकि सामंत वर्ग विशेषाधिकारों का उपभोग करने लगा, जिससे समाज में ऊँच–नीच की भावना और प्रबल हो गई। भूमि दान व्यवस्था ने एक ऐसे पदानुक्रमित समाज की नींव रखी, जो सामंतवादी व्यवस्था की प्रमुख पहचान बना।

कूट शब्द – भोक्ता, भूदान, खंडीय राज्य, अग्रहार, ब्रह्मदेय, बेगार, षाहानुषाहि

प्राचीन भारत में भूमि दान की परंपरा ने सामंतवाद के उदय में केंद्रीय भूमिका निभाई। यह केवल एक धार्मिक या दानशील कृत्य नहीं था, बल्कि इसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में गहरा परिवर्तन आया। भूमि दान ने जहाँ एक ओर ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को सशक्त बनाया, वहीं दूसरी

ओर स्थानीय भू–स्वामियों के रूप में सामंत वर्ग को जन्म दिया। भूसम्पत्ति का उपयोग करने वालों के लिए सामान्यतः भोक्ता, भोगिक, भोगी, भोक्तिक, भोगिजन, भोगपति, भोगपतिक, भोगिकपालक, भोगिरूप, महाभोगी, बृहतभोगिक आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन सबके ऊपर राज्य का स्थान था जिसका प्रतीक राजा था। भूदान प्राप्त करने वाले भोक्ता को परिवार, सम्पत्ति, व्यक्ति आदि के विरूद्ध किए गये अपराधों के लिए दण्ड देने का अधिकार मिल जाता था। इसके अतिरिक्त दीवानी मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार भी उसे प्रदान कर दिया जाता था। प्रायः उपभोक्ता को दान में प्राप्त गाँव का उपभोग करने के सभी उपायों का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त था साथ ही उसे स्वेच्छा से क्रियाफल के उपभोग का अधिकार था। इस प्रकार भोक्ता उत्पादन की प्रक्रिया में भी हस्तक्षेप कर सकता था कभी–कभी भोक्ता के समस्त संसाधनों के उपभोग का अधिकार (स्वयंभोगसमेत) दे दिया जाता। गाँवों को सभी उत्पादों के साथ (सर्वोव्यप्ति सहितः) भी दान किया था। सम्भवतः कभी–कभी किसानों को फसलों की किस्मों में परिवर्तन करने का अधिकार मिल जाता था इससे कृषकों को आजादी से भी वंचित कर दिया जाता था। ये अधिकार भोक्ता की स्वार्थ की सिद्धि में सहायक हुई होगी। निःसंदेह ऐसी व्यवस्था भोक्ता के लाभ में निहित थी। राजा के उत्तराधिकारियों तथा शक्तिसंपन्न लोगों को दान की व्यवस्थाओं का पालन करने के निर्देश दिये जाते। एपिग्राफिया इंडिका, 5, नं. 20, पंक्ति–54 के अनुसार नागपुर के निकट स्थित यह गाँव राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय (939 ई0) ने दान किया था। मध्य प्रदेश में प्राप्त चंदेल दानपत्रों में अनुदत्त गांवों में पैदा की जानेववाली फसलों के नाम भी बताये गये हैं।

पूर्वमध्यकालीन राज्य के स्वरूप को खंडीय राज्य (सेगमेंटरी स्टेट) के रूप में देखा जा सकता है। खंडीय राज्य की अवधारण कृषक राज्य के रूप में निम्नांकित रूप में की जाती है– जिस प्रकार चोल और पांडव राज्य की सरदारियों में प्रभुत्वशाली नट्टार कृषकों के सरदार अपनी पहचान को हमेशा अपने मूल नाडू से जोडे रहते थे, उसी प्रकार बड़े से बडे राजा भी (यहाँ तक की चोल और पांडय राजवंशो के प्रतापी राजा मी) अपने को उसी स्थान का बताते थे जिसकी शक्ति का मूल केन्द्र था। राजाओं और कर्षक सरदारों में अंतर यह था कि राजाओं का बाजाब्ता अभिषेक किया जाता था, लेकिन कृषक सरदारों का नहीं। राजा के राज्यों और कृषक सरदारियों में फर्क यह था कि राजाओं के राज्य बड़े होते थे और कृषक सरदारियाँ छोटी होती थीं। ये दोनों भेद नगण्य तो नहीं थे, लेकिन निर्णायक भी नहीं थे। प्राचीन भारत में भूमि दान की प्रथा ने सामंतवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेष रूप से गुप्त काल और उसके बाद के समय में राजाओं द्वारा ब्राह्मणों, मंदिरों तथा अधिकारियों को भूमि दान (अग्रहार, ब्रह्मदेय आदि) के रूप में दी जाने लगी। ये दान प्रायः कर–मुक्त होते थे और दान प्राप्त करने वालों को उस भूमि पर प्रशासनिक तथा न्यायिक अधिकार भी मिल जाते थे। इससे धीरे–धीरे केंद्रीय सत्ता की पकड़ कमजोर हुई और स्थानीय स्तर पर शक्तिशाली जमींदार या सामंत उभरने लगे, जो अपने क्षेत्रों में लगभग स्वतंत्र शासक की तरह व्यवहार करने लगे। भूमि दान के कारण किसानों और सामान्य जनता का संबंध सीधे राज्य से हटकर इन सामंतों से जुड़ गया। किसान अब कर और श्रम सेवाएँ (विस्थापन, बेगार आदि) इन सामंतों को देने लगे, जिससे एक आश्रित सामाजिक–आर्थिक संरचना विकसित हुई। इस प्रक्रिया ने समाज को कई स्तरों में विभाजित कर दिया, जहाँ ऊपर सामंत और नीचे आश्रित कृषक वर्ग था। इस प्रकार भूमि दान की प्रथा ने आर्थिक और प्रशासनिक विकेंद्रीकरण को बढ़ावा दिया, जो आगे चलकर सामंतवाद की स्थापना का आधार बना।

सामन्तवाद अपने पूरे इतिहास के दौर में कभी भी विश्वव्यापी नहीं हो पाया, बल्कि एक देशकाल के सापेक्ष आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था बना रहा। भारत के कुछ मार्क्सवादी इतिहासकार कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में दो ऊपरी वर्णों (ब्राह्मण एवं क्षत्रिय) द्वारा किये जाने वाले शोषण को सामन्तवाद मानते हैं। आर.एस. शर्मा महोदय के अनुसार भारतीय सामन्तवाद का उद्भव चौथी शताब्दी ईस्वी सन् में हुआ और ग्यारहवीं एवं बारहवीं सदियों में वह अपनी चरम परिणति को प्राप्त हुआ बी.एन.एस. यादव की राय में दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206 ई.) के साथ श्री राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों से सामन्तवाद का पतन आरम्भ हो गया। प्राचीन काल में ऐसे राजकीय कृषि फार्म होते थे जिन पर दास श्रमिक और कैदी काम करते को तथा ऐसी राजकीय भूमि को सीता व इसके अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहते थे। कृषि विस्तार, प्राचीन भारत की राजनीति का प्रमुख भाग था। मौर्य राज्य ने विदेशियों ने अपने राज्य में बसने को प्रेरित करके या राज्य के लोगों को घने आबादी वाले इलाकों से विरल आबादी वाले इलाकों में बसाकर नये गाँव बसाने या उजाड़ पड़े गावों को फिर से आबाद करने की नीति को प्रारम्भ किया। लेकिन गुप्त और गुप्तोचर कालों में इन बड़े–बड़े कृषि फार्मों का उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि

इसके स्थान पर शूद्रों को छोटे उत्पादकों के रूप में बदलते देखा जा सकता है। सातवीं सदी के पूर्वाद्ध तक अधिकांश शूद्र किसान बन चुके थे।

भूमि पर क्रमबद्ध नियंत्रण का उदय उपसामंतीकरण की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विशेष रूप से आठंवी शदी से हुआ। उत्तर और दक्षिण भारत दोनों क्षेत्रों में यह समानता दृष्टिगोचर होती है कि चोलों के अधीन एक दौर में भूस्वामियों के पाँच–पाँच स्तर थे जिनमें राजा शीर्ष पर होता था तत्पश्चात् दानभोगी का स्थान था। दानभोगी के नीचे दखलदार आता था। दखलदार जमीन को पट्टे पर उपदखलदार को देता था, जो उसमें कृषकों से खेती करवाता था। उपसामंतीकरण के ऐसे श्रेणीबद्ध भस्वामियों के वर्ग का जन्म हुआ, जो किसान नहीं थे। यही सामंती उत्पादन पद्धति की विशेषता है जिसमें अधिक से अधिक उपसांमतों के बीच भूस्वामित्व का विभाजन होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रशासनिक व्यवस्था भी खण्डों में विभाजित हई तथा निश्चय ही प्रशासन में उत्तरदायित्व का विकेन्द्रीकरण हो गया। प्रोफेसर आर0 एस0 शर्मा के अनुसार गुप्तोत्तर काल में ज्यादातर भूमि स्वतन्त्र किसानों के पास रही और ये लोग सीधे राज्य को राजस्व देते थे। याज्ञवल्क्य (लगभग 300 ई.) के अनुसार कृषक क्षेत्रस्वामी (भूस्वामी) की सेवा में कार्यरत मात्र एक काश्तकार था। क्षेत्र स्वामी के क्षेत्र या खेत पर महीपति अथवा राजा का सामान्य नियंत्रण होता था। पूर्वी मध्य प्रदेश के चंदेल दानपत्रों में ग्राम के साथ कृषकों को भी दानभोगियों को दे दिया जाता था। स्पष्ट है इससे राज्य के मुख्य उद्देश्य–प्रजा की रक्षा के निर्वाहन में बाधा पहुँची होगी।

प्राचीन भारत में सामन्तवाद यूरोपीय सामन्तवाद की तरह नही था। यूरोपीय सामन्तवाद में मानवीयता का पूर्णतः अभाव रहा। जबकि प्राचीन भारत में सामन्तवाद एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया के रूप में उभर कर आया जिसमें राजा को शासन संचालन में अत्यन्त सुविधा हो गयी। राजा क्षेत्रविशेष की जिम्मेदारी अपने किसी सामन्त को सौंप देता था। सामन्त अपने क्षेत्र में राजस्व वसूली करने के साथ सामान्य प्रशासनिक कार्यो को भी देखता था। सामन्त आवश्यकता पड़ने पर राजा को सैनिक सहायता प्रदान करता था। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय सामन्त अत्यन्त समृद्ध थे। उन्हें अपने क्षेत्र में सामान्य प्रशासन को लागू करने के लिए केन्द्र पर नहीं निर्भर होना होता था। इस प्रकार उनमें अपने क्षेत्र की प्रजा के प्रति एक अपनत्व का भाव होता था। वे यह समझते थे कि उनकी प्रजा की समृद्धि ही उनकी समृद्धि है। दुर्भाग्य वश अधिक धन एकत्रित करने के लालच में वे सामान्य रूप से ऐसा कम ही कर पाते थे। आचार्य कौटिल्य ने सामन्त शब्द का उल्लेख स्वतन्त्र पडोसी राज्य के अर्थ में किया। सामन्तवाद शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए सर्वप्रथम अश्वघोष ने अपनी कृति बुद्धचरित (प्रथत शती ई०) में किया है। शक कुषाण काल में अंकुरित हुआ सामन्तवाद राजपूत काल में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया। शक कुषाण युग में सामन्तवाद के न केवल राजनीतिक अपितु सामाजिक व आर्थिक कारक भी स्पष्ट हो गये थे। प्राचीन भारत की धर्मविजय की अवधारण का सामन्तवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। धर्मविजय के अर्न्तगत विजेता राजा जिजित राजा से भेंट–उपहारादि प्राप्त कर उसे उसके राज्य का राजा बने रहने देता था परन्तु ऐसे राज्य विजित राजा के अधीन ही माने जाते थे तथा विजित राजा सभी प्रकार का कर देने के अतिरिक्त विजेता राजा की सभी आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य होते थे। शासकों द्वारा प्रदप्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों का सामन्तवाद के विकास में प्रमुख योगदान रहा है। भूमिदान सम्बन्धी सर्वप्रथम उल्लेख शक–सातवाहन लेखों में मिलता है। गुप्तकाल में भूमि सम्बन्धी अनुदानों में वृद्धि हो गयी तथा दान के अर्न्तगत भूमि में स्थित चारागाहों, खानों, निधियों, बेगार आदि राजस्व के समस्त साधन दानग्राही को देने की प्रथा प्रारम्भ हो गयी। बारहवीं शती ईस्वी में ग्रामाधिकार के आधार पर सामन्तों की श्रेणियाँ पूर्णतयः स्पष्ट हो चुकी थी। इसमें महामण्डलेश्वर, माण्डलिक, महासामन्त, सामन्त, लघु सामन्त तथा चतुरांशका क्रमशः एक लाख ग्राम, पचास हजार ग्राम पर थे।

शक शासक उषावदात (लगभग 130 ई0) के नासिक गुहालेख व अन्य लेखों में उसके द्वारा प्रदत्त ग्राम तथा भूमिदान की चर्चा है। तथा सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी (106–130) के नासिक प्रशस्ति (दो गुहालेख) से पता चलता है कि उसने बौद्ध भिक्षओं को ग्राम दान में दिये थे। ग्राम, बीस हजार ग्राम, दस हजार ग्राम पाँच हजार ग्राम तथा एक हजार ग्राम के स्वामित्व वाले सामन्त थे। चत्रांशका के नीचे राजपुत्रों की गणना की जाती थी जो ग्राम–प्रमुख होते थे। पो. बी. एन. एस. यादव के अनसार ब्राह्मणों को प्रदत्त भूमि सामन्तवाद का स्थायी आधार नहीं हो सकती थी क्योंकि उन्हें प्राप्त दान सामान्यतः एक ग्राम से अधिक नहीं रही होगी, इसके अतिरिक्त ऐसे दानग्राही धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों में संलग्न रहते होंगे। मनुस्मृति में राजस्व अधिकारियों

को वेतन के बदले भूमिदान देने की संस्तुति है। मनु के अनुसार श्दस ग्रामों का स्वामी एक कुल, बीस ग्रामों का स्वामी पाँच कुल, सौ ग्रामों का स्वामी एक ग्राम तथा हजार ग्रामों का स्वामी एक नगर को अपने निर्वाह के लिए प्राप्त शक सम्राट षाहानुषाहि कहलाते थे क्योंकि उनकी अधीनता में कई षाहि (सामन्त) होते थे। इसी प्रकार कुषाणों की राजाधिराज की उपाधि, पश्चिमी शकों की महाक्षत्र व क्षत्रप की उपाधि तथा कालान्तर में गुप्त सम्राटों की महाराजाधिराज की उपाधि सामन्तवादी व्यवस्था की सूचक है पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल लेख से पता चलता है कि हर्ष की सेना में ऐश्वर्यशाली सामन्त थे। हर्षचरित में बाणभट्ट ने सामन्तों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि हर्ष ने महासामन्तों को अपना करद (अधीनस्थ करना) बना लिया था। करदीकृत महासामन्त थे।

हर्षचरित में वर्णित छः प्रकार के सामन्तों की कोटियों को प्रो. रामशरण शर्मा महोदय ने स्पष्ट किया है कि साधारण कोटि के भू–स्वामी को सामन्त, बड़े भूस्वामी और अधिकारी को महासामन्त, पराजित शत्रु सरदारों को शत्रुमहासामन्त, स्वेच्छा से सम्राट की अधीनता स्वीकार करने वाले को आप्तसामन्त, सम्राट के सर्वाधिक विश्वासपात्र व्यक्ति को प्रधान सामन्त तथा विरोधी सामन्तों को प्रतिसामन्त कहा जाता था। आर. एस. शर्मा ने भारतीय सामन्तवाद की प्रमुख विशेषतायें अग्रलिखित प्रकार की बताई हैं भूमि–अनुदान दी गयी भूमि के साथ–साथ किसानों का हस्तान्तरण, बेगार प्रथा का प्रसार, किसानों व शिल्पियों तथा व्यापारियों को अपनी इच्छित जगह पर बसने से रोक, मुद्रा का अभाव, व्यापार का हास, राजतन्त्र व्यवस्था तथा दण्ड प्रशासन का अनुदान ग्राहियों को सौंपा जाना, वेतन के बदले अधिकारियों को भू–अनुदान, सामन्ती दायित्वों का विकास तथा बन्द अर्थव्यवस्था। मनु के अनुसार विजित राजा, पराजित शासक को पूर्णतः नष्ट नहीं करता था बल्कि पराजित राजा अथवा उसके परिवार के किसी अन्य सदस्य को अपने अधीनस्थ शासन–सत्ता सौंप देता था। बारहवीं शती ई. में आने वाला अरब यात्री सुलेमान भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। आचार्य शुक्र के अनुसार सामन्त 100 ग्रामों पर शासन करने वाला सामन्तवादी शासक था परन्तु इन्हीं गाँवों पर नृसामन्त नामक एक अधिकारी राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। प्राचीन भारत में कभी–कभी सामन्त शासकों को केन्द्रीय शासन में उच्च पद भी दिया जाता था। उदाहराणार्थ–चालुक्य नरेश कुमारपाल का बाघेला क्षेत्र का सामन्त वीरबाला तथा भीम द्वितीय का सामन्त रत्नपाल बोनों ही समस्तमुद्रापारा का कार्य–भार देखते थे। चन्देल नरेश त्रिलोकवर्मन ने अपने सामन्त माण्डलिक माल्यासिमहा को मन्त्री पद दिया था। डा. उदगांवकर के अनुसार राजदरबार में सामन्त शासकों की स्थिति ठीक वैसी ही होती थी जैसी आधुनिक काल में ब्रिटिश प्रशासन के अर्न्तगत पॉलिटिकल ऐजेन्ट अथवा रेजीडेन्ट की थी। सामन्त शासक, अपने राजा के सैन्य अभियान में अपने सैन्य बल के साथ पूर्ण सहायता करते थे। कालान्तर में सामन्त शासकों की स्थिति इतनी सुदृढ़ हो गयी थी कि वे जहाँ एक ओर स्थानीय प्रशासन पर प्रभावी हो गयी वहीं दूसरी ओर राजा के चयन में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने लगे। सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति प्राचीन भारतीय प्रशासन तन्त्र में सकारात्मकता दृष्टिगोचर रहा है।

प्रशासनिक तन्त्र में जनसंख्या के विभिन्न घटकों के साथ एक पारदर्शक नीति का अनुसरण किया गया। यद्यपि नीति निर्धारण मे नैतिक मूल्यों पर अत्यन्त जोर दिया गया परन्तु जनसंख्या के कुछ विशिष्ट घटक प्रशासन में अपना वर्चस्व बनाने में सफल रहे। ऐसे में इस प्रश्न का उठना स्वभाविक हो जाता है कि प्राचीन हर्षराज गुहिल जो प्रतिहार राजा भोज का सामन्त शासक था, ने राजा भोज के उत्तरी सैन्य अभियान में सहायता की थी। कक्का जो सम्राट नागभट्ट का सामन्त शासक था, ने गौड़ शासक के विरूद्ध मुद्रागिरी के युद्ध में अपने शासक के साथ लड़ा था। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय के नरसिंह चालुक्य नामक सामन्त शासक ने प्रतिहार राजा महीपाल के विरूद्ध युद्ध में अपने राजा की सहायता की। बंगाल के शासक रामपाल ने उत्तराधिकार युद्ध में सामन्तों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्हें भारी मात्रा में धन दिए। शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण प्रजा के प्रति जनकल्याण की नीति मौजूद रही अथवा जनसंख्या के किसी विशिष्ट वर्ग के प्रति ही सहानुभूति थी। जनसंख्या के अवयवों का प्राचीन भारतीय प्रशासन में महत्ता देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः प्राचीन शासक पशपात पूर्ण नीति के अनुपालन को स्वीकार करते थे। परन्तु वास्तव में ऐसा नही था। प्राचीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में कल्याणकारी राज्य की परिभाषा भिन्न थी।

प्राचीन भारत में जनकाल्याणकारी नीति को चार चरणों में बँटा हुआ देखा जा सकता है। जनकल्याण का प्रथम चरण चिन्तन स्तर परः द्वितीय वातावरण निमार्ण, तृतीय, पक्षपाती या लाभान्वित व्यवहार तथा चतुर्थ, कल्याणकारी कार्यों का सकिय अनुपालन। जनकल्याण के चिन्तन का कार्य प्राचीन मनीषीयों द्वारा पर्याप्त रूप से

किया गया उस चिन्तन को कार्य–रूप में परणित करने के लिए वातावरण उपलब्ध कराने का कार्य सुचारू प्रशासनिक तन्त्र का रहा। राजा ने जनकल्याण से प्रजा को लाभान्वित करने का कार्य प्रशासनिक तन्त्र को माध्यम बनाकर किया। कई बार प्राचीन शासकों के कल्याणकारी कार्य बाह्य रूप में पक्षपाती लगते हैं परन्तु ऐसा था नही। यथा–बौद्ध संगीतियों को राजाओं का पर्याप्त संरक्षण मिला जिससे बौद्धों का तो लाभ अवश्य हुआ कि उनका संगठन दृढ हुआ परन्तु अन्य धर्मो या सम्प्रदायों को किसी प्रकार का बलात् नकारात्मक हाँनि नही पहुँची। अतएव प्राचीन शासकों के इस प्रकार के कृत्य जनकल्याण से विमुख नहीं माने जा सकते हैं। इसीप्रकार अन्य उदाहरण है–कुषाणों के सिक्कों पर विभिन्न सम्प्रदायों के चालीस देवी–देवताओं का उत्कीर्ण होना जो कुषाणों की धार्मिक साहिष्णुता का परिचायक है। हर्ष के सिक्कों पर शिव–पार्वती की आकृति उत्कीर्ण है। जनकल्याण के सक्रिय अनुपालन के अन्तर्गत प्राचीन शासकों ने प्रशासनिक स्तर से ऐसे कार्य किये जो निश्चित रूप से जनकल्याणकारी कार्यों की श्रेणी में आते हैं। यथा–राज्य द्वारा सुरक्षा, चिकित्सा, सिचाई, मनोरंजन, अकाल के समय खाद्यान्न व्यवस्था इत्यादि । प्राचीन भारतीय समाज में वर्णसंकर को रोकने का प्रयास राज्य में धर्म रक्षा के लिए योगये जनकल्याण की श्रेणी में ही आते हैं। इसी प्रकार जनसंख्या के अवयवों में ब्राह्मण प्रभुत्व की स्थापना, वर्ण–व्यवस्था, जाति व जातिगत नियमों का अनुपालन भी प्राचीन धारत में जनकल्याण का कार्य रहा परन्तु यह दुर्भाग्य रहा कि ऐसे कृत्यों से जनसंख्या हे अन्य अवयवों की उपेक्षा हई। धार्मिक यज्ञों व अनुष्ठानों के आयोजन का प्रायोजन जनकल्याण (यथा–वर्षा या चक्रवर्ती राज्य की अपेक्षा इत्यादि) से था परन्तु अपनी विद्वता एवं चातुर्य से समाज के कुछ वर्ग प्रभावी होते चले गये। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भूमि दान ने सत्ता के स्वरूप को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। जहाँ पहले राज्य की शक्ति केंद्रीकृत थी, वहीं अब वह अनेक छोटे–छोटे शक्तिकेंद्रों में विभाजित हो गई। सामंत अपने–अपने क्षेत्रों में सेना रखते थे और समय–समय पर राजा को सैन्य सहायता प्रदान करते थे। बदले में उन्हें अधिक अधिकार और स्वायत्तता प्राप्त होती थी। इस प्रकार एक पारस्परिक निर्भरता का संबंध विकसित हुआ, जो सामंतवाद की आधारभूत संरचना है। कई बार ये सामंत इतने शक्तिशाली हो जाते थे कि वे केंद्रीय सत्ता को चुनौती देने लगते थे, जिससे राजनीतिक अस्थिरता भी उत्पन्न होती थी।

सन्दर्भ सूची :–

1. हरबंस मुखिया (संपा.), अनु. आदित्यनारायण सिंह, फ्यूडालिज्म और गैर यूरोपीय समाज, ग्रन्थ शिल्पी नई दिल्ली 110002, प्रथम हिन्दी संस्करण 1998.
2. वी. आई. कल्यानोव और आई. पी. वैकोव, जी. आर. शर्मा द्वारा संपादित, कुषाण स्टडीज, इलाहाबाद संस्करण 1968.
3. आर. एस. शर्मा, इंडियन फ्युडलिज्म ।
4. अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, (सं० आर० शामशास्त्री), 1924, मैसूर।
5. आर तिरूमलै लैंड ग्राट्स एंड अग्रेरियन रिएक्शंस इन चोल एण्ड पाड्य टाइम्स, मद्रास विश्वविद्यालय, 1987.
6. मार्क्स एंगेल्स, प्री–कैपिटलिस्ट सोसियो–इकानमिक फार्मेशंस, 1979.
7. रामशरण शर्मा, शूद्राज इन एनशिएंट इण्डिया, दिल्ली, 1990.
8. पदमा बी. उदगांवकर, द पालिटिकल इन्सटीट्यूशन्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन।
9. इलिएट एण्ड डोसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 1
10. एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 8 तथा इण्डियन एन्टीक्यूअरी, जिल्द 18
11. एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 25
12. बी. एन. एस. यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया।
13. आर.एस.शर्मा, का लेख, फ्राम गोपति दु भूपति, स्टडीज इन हिस्टरी, भाग 2, 1980.